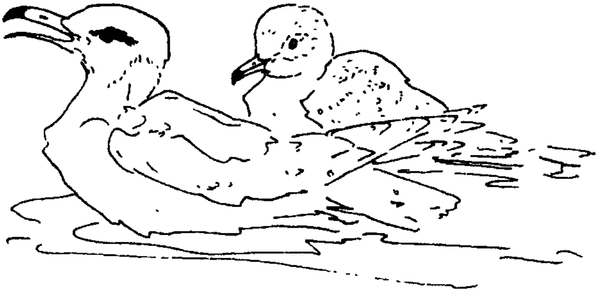

माइक्रो-बायोलॉजी, मानो कि बर्ड वॉचिंग

मिलिंद वाटवे

आखिर क्या फर्क था कि बर्ड वॉचिंग सरस, सजीव थी जबकि माइक्रो-बायोलॉजी रूखा और जड़ विषय

सूक्ष्म जैविकी (Micro Biology) पढ़ना शुरू करने के बहुत पहले ही मैं परिंदों में रुचि लेने लगा था। मुझे मालूम नहीं कि मैंने सूक्ष्म जैविकी विषय क्यों चुना। शायद ऐसे ही क्योंकि उन दिनों उन विद्यार्थियों के सामने बहुत कम विकल्प मौजूद थे जो चिकित्सा की पढ़ाई में नहीं जाते थे। इसी तरह बर्ड वॉचिंग को लेकर भी मैं बहुत गंभीर नहीं था। हुआ यूं कि हाई स्कूल के दिनों में मैं शौकिया तौर पर एक क्लब से जुड़ गया। उसके प्रशिक्षक एक दो बार हमें 'परिंदा दर्शन (बर्ड वॉचिंग)' के लिए ले गए। किसी तरह यह शौक परवान चढ़ा और मैं धीरे-धीरे काफी रुचि लेने लगा। आज मैं विश्वास के साथ कह सकता हूं कि यदि मैं एक अच्छा सूक्ष्म जीव-विज्ञानी हूं तो इसका श्रेय बर्ड वॉचिंग को जाता है।

एक जड़ तो एक मज़ेदार

जब मैंने माइक्रो-बायोलॉजी पढ़ना शुरू किया तो पाया कि यह बिल्कुल

नीरस और जड़ विषय है। मैं हमेशा इसकी तुलना बर्ड वॉचिंग से करता जो सरस, ज्ञान से भरा हुआ और हमेशा चुनौती प्रस्तुत करने वाला था। मैं हमेशा सोचता कि आखिर इस अंतर का कारण क्या है? शायद चिड़ियों की खूबसूरती और सजीलापन एक वजह होगी या फिर यह कि क्षेत्रीय भाषाओं और अंग्रेज़ी में परिंदों के सीधे-साधे नाम हैं, और हमें लेटिन के कठिन नामों से जूझना नहीं पड़ता, या फिर बंद कमरों से बाहर निकलने की अनुभूति, या फिर कुछ और?

लेकिन आज लगता है कि मैंने इस सबसे महत्वपूर्ण कारण को पहचान लिया है। हमारे माइक्रो-बायोलॉजी के अध्यापक हमें दिखाकर बताते - 'यह इ. कोलाई है। यह मैककौन्की के अगार (Agar) में गुलाबी कॉलोनियां बनाता है; क्योंकि यह लैक्टोज़ में खमीर उठा देता है और अम्ल बनाता है। वहीं सालमोनेला (Salmonella) की कॉलोनियां रंगहीन होती हैं; क्योंकि यह लैक्टोज़ में खमीर नहीं उठाता।' दूसरी तरफ बर्ड वॉचिंग के प्रशिक्षक एक अलग ही रास्ता अख्तियार करते। 'अगर तुम्हें एक ऐसी चिड़िया दिखे जिसे तुम नहीं पहचानते, तो क्या करोगे? इसके आकार की तुलना दूसरे जाने पहचाने परिंदों के आकार से करो। उसके शरीर के हिस्सों को गौर से देखो – चोंच, पूंछ, पंखों का आकार, उसके उड़ने का तरीका। ज़मीन पर यह सीधे-सीधे चलती है या फिर कूदते-फुदकते हुए? उसका चित्र बनाओ और उस हर चीज़ का वर्णन लिखो जिसे तुमने देखा है। इतना सब कुछ करने के बाद लाइब्रेरी में जाओ और *सालिम अली* की या फिर पक्षियों से संबंधित किसी और किताब को देखो और इस अनोखी चिड़िया को ढूंढो।' मेरे विचार में फर्क यहीं पर है। माइक्रो-बायोलॉजी, प्राणीविज्ञान, वनस्पति शास्त्र की हमारी पढ़ाई शायद ही हमें कभी 'खुद खोजने' की ओर प्रेरित

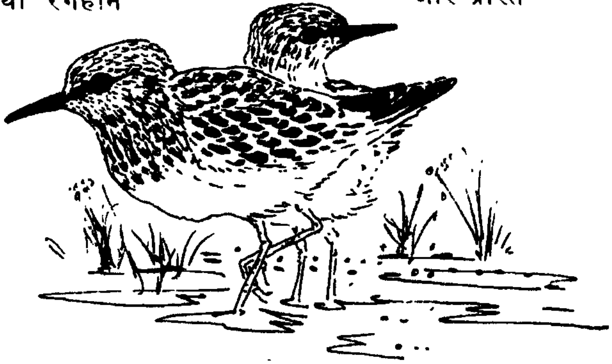

करती है – चाहे वो सूक्ष्म जीवों की अलग-अलग तरह की कॉलोनियां हों, कोई अनोखा कीट हो या फिर कोई विचित्र मशरूम (कुकुरमुत्ता)।

इतने विविध कि. . .

सौभाग्यवश एम. एससी. की हमारी पढ़ाई में कुछ खोजने के मौके भरपूर थे। केन्द्र में स्नातकोत्तर के कोर्स का पहला बैच हमारा ही था। सभी कुछ अनगढ़ और अनिश्चित था। मैं समझता हूं कि यही सबसे उत्तम मौका था हमारे लिए। चूंकि शुरुआत हमें ही करनी थी सो हमने खोजबीन करना शुरू कर दिया। शीघ्र ही हमें आभास हुआ कि सूक्ष्म जीवों का संसार पक्षियों के संसार से कम मनोहारी (आकर्षक) नहीं है। बल्कि यह तो और अधिक वैविध्यता लिए हुए है, सुंदर और सजीव है। वे सिर्फ बेलनाकार और गोलाकार ही नहीं होते बल्कि गुलाब की पंखुड़ियों की तरह भी जमे हुए मिलते हैं, तो कभी-कभार घोंघे के खोल की तरह सर्पिलाकार जमावट लिए हुए, मोतियों की तरह। यही नहीं और भी बहुत से रूप होते हैं सूक्ष्मजीवियों के – चींटियों की सेना की तरह शिकार की तलाश में घूमते हुए बैक्टीरिया के समूह, कहीं पतले लंबे कभी न खत्म होने वाले तंतु, तो कभी तारों का आकार लिए, या सुईनुमा भी मिल जाएंगे; और रिबन जैसे पट्टीनुमा भी। यही नहीं दुनिया के सबसे रंगीन फूल भी शायद यहीं

हमारी आंतों में मिलने वाला ई कोलाई बैक्टीरिया। यह होता है।

मिलेंगे – माइक्सो बैक्टीरिया की फ्रुटिंग बॉडीज़ के रूप में। और इन सब को काफी आसानी से खोजा जा सकता था। बस शर्त सिर्फ यह थी कि हमेशा अपनी जिज्ञासा बनाए रखो, सदैव नई खोज की तलाश में रहो और किताबों में दी गई विधियों से पार जाकर प्रयास करो।

कई बार यह तलाश निराशा को भी साथ लेकर आती थी। खासकर जब आपका अवलोकन किताबों में दी गई किसी भी चीज़ से मेल नहीं खा रहा हो। कई सालों बाद मुझे पता चला कि सूक्ष्म जीवों का लगभग 90 फीसदी संसार तो अभी भी अनजाना है। एक ग्राम मिट्टी में करीब 4000 तरह के डीएनए (यानी इतने तरह के सूक्ष्म जीवी) मिल जाएंगे। यदि इन्हें पनपाएं तो करीब 50 से 60 तरह की कॉलोनियां तो प्राप्त हो ही जाएंगी। इनमें से कई तो अभी भी विज्ञान की पहुंच से बाहर हैं। अपनी कल्पना को दौड़ाओ, इनको पल्लवित करने की कोई नई विधि खोजो तो यह लगभग तय है कि तुम किसी गैर-पहचानी प्रजाति (Species) को पा लोगे।

. . . बस ये पढ़ना है

दुर्भाग्यवश सूक्ष्म जीवविज्ञान का हमारा प्रशिक्षण शायद ही कभी 'ई. कोलाई' के दायरे से बाहर निकलता हो। लेकिन माइक्रो-बायोलॉजी में ऐसा होना कोई अनोखी बात नहीं है। हालांकि विज्ञान का एक मूल तत्व है

माइक्सोबैक्टीरिया की फ्रुटिंग बॉडीज़।

खोज, तलाश – पर यह 'अन्वेषण-तत्व' विज्ञान के हमारे प्रशिक्षण से एकदम गायब है। इसी समस्या का एक पहलू है हमारा विश्वविद्यालयीन ढांचा; जिसमें ज़ोर इस बात पर है कि विश्वविद्यालय से संबद्ध सभी कॉलेजों में बिल्कुल एकरूप पढ़ाई होनी चाहिए। इसीलिए ज़रूरी होता है कि पढ़ाई जाने वाली हरेक चीज़ का ज़िक्र सिलेबस में हो। इसे परिणाम कहें, या यूं कहें कि विद्यार्थी और अध्यापक इस स्थिति की व्याख्या इस प्रकार करते हैं कि सिलेबस के अलावा कोई भी चीज़ नहीं पढ़ाई जानी है। जड़ सिलेबस, एकदम परिभाषित. . . और यह होता है अन्वेषण का अंत। और पाठ्यक्रम में आपको पढ़नी होती हैं फकत फलानी और फलानी प्रजातियां, फलाने फलाने प्रयोग – और इनके सिवाए कुछ और नहीं। यानी इसका मतलब यह निकलता है कि – यदि खोजबीन विज्ञान का एक इतना आवश्यक तत्व है, और मानकीकृत पाठ्यक्रम इस खोज-तत्व के लिए घातक होता है, तो शायद पाठ्यक्रम का होना ही अपने आप में विज्ञान की मूल भावना के खिलाफ है

क्या हम बिना पाठ्यक्रम के विज्ञान पढ़ा सकते हैं या कम-से-कम बिना एक जड़ पाठ्यक्रम के। मैंने एक बार ऐसी कोशिश की थी, जब मुझसे कॉलेज के पहले वर्ष के विद्यार्थियों को प्रेक्टिकल कराने को कहा गया। पहले ही दिन

हमारे मुंह में मिलने वाला एक बैक्टीरिया – *स्ट्रेप्टोकॉकस सेलिवेरिया;* यह गोलाकार होता है और चेन नुमा झुंड बनाता है

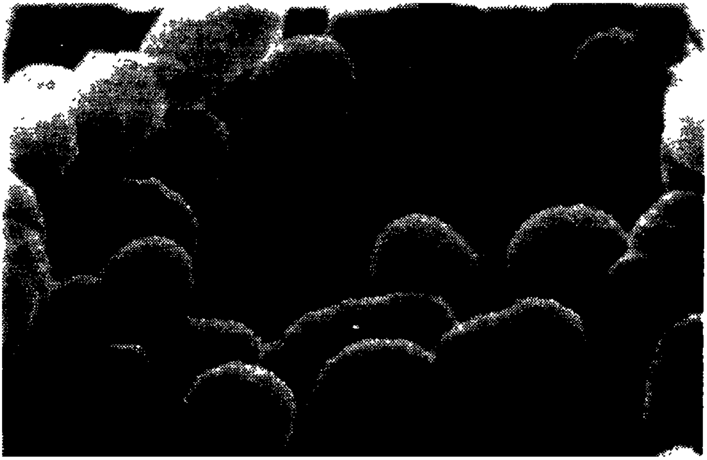

मैंने विद्यार्थियों के प्रत्येक समूह को एक-एक सूक्ष्मदर्शी और एक-एक पेंचकश दिया; और उनसे कहा कि इनसे खेलो – सूक्ष्मदर्शी के हर पुर्ज़े को अलग कर दो और उन्हें फिर से वापस जोड़ने की कोशिश करो। अगले दिन मैंने उनसे कहा कि तुम जो भी सूक्ष्मदर्शी से देखना चाहते हो देखो - चाहे वो कितनी भी अजीबो-गरीब चीज़ ही क्यों न हो। इसके बाद आगे का रास्ता खुद-ब-खुद निकलता गया।

हमने बहुत-सी किस्म के सूक्ष्म जीवों का अवलोकन किया। काफी साफ था कि इसके बाद उनका सवाल होता – 'यह क्या है?' मैं इसका जवाब नहीं देता। वास्तव में कई बार तो दे ही नहीं सकता था। सूक्ष्म जीवों की विविधता इतनी व्यापक है और वो इतने फर्क हैं कि मुझे कहना पड़ता था – मैं नहीं जानता। शायद कोई भी नहीं जानता। कल्पना करो कि आप पहले जीवविज्ञानी हैं इस धरती पर जिसने इस जीव को देखा है – आप इसके बारे में औरों को कैसे बताओगे। कैसे खींचोगे इसका चित्र। बिल्कुल उसी तरह का मामला है मानों कोई 'बर्ड वॉचर' माइक्रोस्कोप में से देख रहा हो। मैंने पाया कि विद्यार्थी काफी उत्साहित थे यह सब करते हुए। अवलोकनों से सवाल निकले। इन सवालों ने और अन्वेषण, और अवलोकन करने की ओर प्रेरित किया। आगे क्या करना है इसके बारे में जब भी कोई तार्किक सुझाव आया तो हमने वो सब करके देखा।

विद्यार्थियों ने 'पोषक अगार' या 'मैककोन्की के अगार' को तैयार नहीं किया – बल्कि उन्होंने वह तैयार किया जो उन्हें लगा कि उनके जीवों के लिए बेहतर रहेगा, ज़्यादा पोषक होगा। साल के अंत में जब हमने सिलेबस देखा तो पाया कि सभी कुछ पूरा हो चुका है। हो सकती है न माइक्रो-बायोलॉजी भी, बर्ड वॉचिंग की तरह रोमांचकारी!

मिलिन्द वाटवे: पूना के आबासाहेब गरवारे कॉलेज में माइक्रो-बायोलॉजी पढ़ाते हैं।

(यह लेख 'इंडियन एकेडमी ऑफ साइंसेज' द्वारा प्रकाशित विज्ञान पत्रिका 'रेज़ोनेन्स' के अक्टूबर 1996 अंक से लिया गया है। मूल लेख अंग्रेजी में। अनुवाद: रजनीकांत शर्मा)